ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2017; 3(3): 570-575
www.allresearchjournal.com
Received: 22-01-2017
Accepted: 23-02-2017

प्रियंका कुमारी

सहायक प्रध्यापक, शोधार्थी
इतिहास विभाग, ल0ना0मिथिला
विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर,
दरभंगा, बिहार, भारत।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान

प्रियंका कुमारी

DOI: <https://doi.org/10.22271/allresearch.2017.v3.i3i.7547>

सारांश

प्रस्तुत शोध शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में आर्यसमाज का योगदान पर आधारित है। शिक्षा किसी भी समाज में चलने वाली निरंतर एवं उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। इसके द्वारा ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास और उसके ज्ञान में वृद्धि होती है तथा वह देश के लिए एक योग्य नागरिक बनता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति के विकास की कल्पना असंभव नहीं है क्योंकि शिक्षा ही हमें अपने राष्ट्र के प्रति कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। इसके पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति की मनुष्य नकल करके आज हम नैतिकता और आदर्शों से दूरहोते जा रहे हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली प्राचीन शिक्षा पद्धति से बिल्कुल अलग है। आज के विद्यार्थी में असंतोष एवं अनुशासन हीनता बेरोजगारी, कर्तव्यपलायतना की समस्या जटिल होती है आज की शिक्षा प्रणाली में प्राचीन आदर्शों का समावेश करके इन सभी समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। प्राचीन या वैदिक शिक्षा के मूलभूत आदर्श श्रद्धा, सेवा आदर, अनुशासन और ब्रह्मचर्य थे। इन सभी आदर्शों का अनुकरण कर हम वर्तमान शिक्षा और साहित्य का योगदान बना सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज शिक्षा प्रणित के उपरांत व्यक्ति के सकारात्मक सोच एवं दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन देखा जा सकता है।

मूल शब्द: स्वामी दयानन्द, धर्म, समाज, शिक्षा साहित्य, नैतिक, वारित्रिक, व्यवसायिक, आर्यसमाज

प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द धर्म समाज आर्य समाज के संस्थापक थे। वे समाज सुधारक और राष्ट्र भाषा "हिन्दी" के प्रचारक के रूप में अधिक प्रचलित हैं। इन सब कार्यों के लिए उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये थे और इसी कारण वे शिक्षा शास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे अपनी भारतीय पद्धति से ही जाने वाली शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने अंग्रेजी माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा का विरोध किया है और प्राचीन परम्परानुसार वेद उपनिषद और स्मृतियों की शिक्षा पर बल दिया। दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के महत्व को जीवन के प्रत्येक पहलू में वर्णित किया।

महर्षि दयानन्द शिक्षा को ज्ञान अथवा विद्या प्राप्त करने का साधन मानते थे। उनके अनुसार वह ज्ञान जिससे ब्रह्मा जीवात्मा और पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है, और मनुष्य का लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से शुभ एवं कल्याण होता है। वही शिक्षा है। उनके अपने शब्दों में विद्या में विलास करने वाले मन का निर्माण करना ही शिक्षा है "विद्या में विलास मनुष्य घृतशील शिक्षा" स्वामी जी ने व्यवहार भानु शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है। जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति करता है और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनन्द नाद करता है, वह शिक्षा है। राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में भी दयानन्द जी सचेत थे। उन्होंने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना भी तैयार की थी, और स्थान-स्थान पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करने वाले विद्यालयों की स्थापना की थी। इन विद्यालयों में साक्षरता और व्यवहारिक जीवन का शिक्षा पर अधिक बल दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि सैद्धान्तिक रूप से प्राचीन परम्परा के पोषक होते हुए भी वे आधुनिक युग की आवश्यकताओं से आँख नहीं मोचते थे।

स्वामी दयानन्द जी मनुष्य जीवन के चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ काम, व मोक्ष के समर्थक थे। वे मनुष्य को पहले लौकिक जीवन के लिए और उसके बाद उसे पारलौकिक जीवन के लिए तैयार होने की सलाह देते थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा को वे दोनों ही कार्य करने चाहिए।

उन्होंने शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मुक्ति माना है। परन्तु यह बात नहीं है कि उन्होंने इस जीवन की वास्तविकता से मुह मोड़ा हों उन्होंने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, वारित्रिक, व्यवसायिक, सभी प्रकार के विकास पर बल दिया है। महर्षि दयानन्द सच्चो अर्थों में भारतीय थे, इसलिए उन्होंने भारतीय शिक्षा को पुनः भारतीय बनाने के प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द जी के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए।

Corresponding Author:

प्रियंका कुमारी

सहायक प्रध्यापक, शोधार्थी
इतिहास विभाग, ल0ना0मिथिला
विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर,
दरभंगा, बिहार, भारत।

महर्षि दयानन्द इसी भौतिक संसार की यथार्थता स्वीकार करते थे। उनके दृष्टानुसार मनुष्य को पहले वस्तु जगत का ज्ञान कराना चाहिए। इस ज्ञान ही सीमा से पदार्थों का वास्तविक ज्ञान एवं उनका मानव कल्याण की दृष्टि से प्रयोग, आचरण की शिक्षा और आनन्द कारी क्रियाएँ होती हैं। नैतिक विकास के लिए महर्षि का दर्शन था, कि मानव अपने कर्मों का फल भोगता है। मानव अपने कर्मों मानव अपने कर्मों के अनुसार ही कर्मों के फल भोगता है वास्तव में मनुष्य नहीं बल्कि उसकी जीवात्मा होती है, मनुष्य तो भोग का माध्यम होता है। इसी प्रकार वह मुक्ति के लिए वैदिक ज्ञान कर्म को सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे। उनके अनुसार मनुष्य को इन गूढ़ रहस्यों का ज्ञान शिक्षा के द्वारा ही प्रदान किया जा सकता है। महर्षि मानते थे कि प्रत्येक नामव का जीवन नैतिक मूल्यों व आदर्शों के आधार पर स्थापित होना चाहिए। वे मानते थे कि शिक्षा के उचित प्रसार के द्वारा ही बालकों के जीवन में उच्चा आदर्श स्थापित किये जा सकते हैं। उन्होंने शिक्षा के द्वारा करोड़ों मनुष्यों के हित माकना का कार्य किया है।

1813 के अधिनियम के द्वारा शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी ने अपने ऊपर लिया तथा एक लाख रुपये नगद की धनराशि स्वीकृत भी कर दी गयी। शिक्षा के भाषाई माध्यम के सम्बंध में कम्पनी के अधिकारी तीन विचार धाराओं में बंटे थे।

- प्रथम विचारधारों के लोग प्रचीन ज्ञान की शिक्षा संस्कृत व अरबी के माध्यम से प्रदान करने के पक्ष में थे।
- द्वितीय विचार धारा के लोग यूरोपीय साहित्य और ज्ञान का प्रसार भारतीय भाषाओं के माध्यम से करने के पक्षधर थे।
- तीसरी विचारधारा के लोगों की इच्छा थी कि भारतीय जनता में यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से किया जाय।

तत्कालीन लोकशिक्षा समिति के अध्यक्ष लार्ड मैकाले ने उपर्युक्त विवाद का समाधान सन् 1835 ई० में भाषा माध्यम के सम्बन्ध में अंग्रेजी के पक्ष में निर्णय देकर किया। भारत में इसके पश्चातय साहित्य कला, दर्शन तथा विज्ञान का प्रसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से किया जाय।

अतः लार्ड मैकाले ने अपनी शिक्षा निति के द्वारा भारत में अंग्रेजी भाषा के प्रसार की सशक्त सिफारिश की। उनका विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षा भारत में व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करेगी जो रंग एवं रूप से तो भारतीय होगा हृदय तथा मस्तिष्क से अंग्रेज होगा।

लार्ड मैकाले के आलावा कुछ भारतीय विद्वान भी अंग्रेजी शिक्षा के पक्षधर थे—राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे व्यक्तियों ने अंग्रेजी शिक्षा का पूर्ण रूपेण समर्थन किया। अंग्रेजी शिक्षा लागू करने के लिये लार्ड विलियम बैटिंग ने लार्ड मैकाले तथा भारतीय सुधारकों की विचारधारा से सहमत होकर उनका विचार था कि ब्रिटिश सरकार का भारतीयों की शिक्षा के लिये प्रमुख उद्देश्य यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रसार पर ही व्यय की जानी चाहिए।

अंग्रेजी की पश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने भारतीय की सभ्यता तथा संस्कृति की दृष्टि से हीन बनाने में व्यापक रूप से सहयोग दिया। अंग्रेजी शिक्षा से भारतीयों ने पाश्चात्य रहन—सहन का अनुकरण करना प्रारम्भ किया, अपने धर्म और साहित्य का परित्याग के पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के अत्यंत निकट सम्पर्क में रहकर भारतीय अपने धर्म व संस्कृति को ही भाव से देखने लगे प्राचीन परम्पराओं एवं रीतियों को अनुपयोगी तथा ढकोसला मात्र कहा जाने लगा। जिस प्राचीन दार्शनिक आधार—शिला पर भारतीय समाज के जीवन रूपी भव्य भवन को स्थापित किया गया था उसें लोग निरर्थक महसूस करने लगे और जीवन पाश्चात्य जीवन उनका मुख्य मार्गदर्शन बन गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सर्वप्रथम विद्यारूपी आभूषण को अन्य समस्त आभूषणों से श्रेष्ठ बताते हुए लिखा— “सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म और स्वभाव रूपी आभूषण को धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है उन्होंने विद्याभिलाषियों की प्रशंसा करते हुए लिख—जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है, सुन्दर शक्ति, स्वभाव युक्त, सत्य भाषणदि, नियम पालन युक्त और जो अभिमान अपवित्रता से रहित अन्य की मनन शक्तियों के नायक वेद विहित कार्यों से पराये का उपकार करने में रहते हैं, वे नर—नारी धन्य हैं”

शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द शिक्षा को मानव जीवन का महत्वपूर्ण अध्येय माना। सत्यार्थ प्रकाश में मनुसमृति के आधार पर स्वामी दयानन्द जी ने स्पष्ट किया कि राजा का कर्तव्य है कि समस्त कन्याओं और लड़कों को एक निश्चिता अवधि तक ब्रह्मचर्य में रखकर शिक्षा प्रदान कर विद्वान बनाना चाहिए और यदि कोई इस आज्ञा का उलंघन करे तो उसे दण्डित करना चाहिए अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात लड़का व लड़की घर में न रहे आचार्य कुल में रह कर निश्चित रूप से शिक्षा ग्रहण करें।

पुनश्च संसार में जितने भी दान है अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र—तिल, सुवर्ण और धृतादि। इस सब दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। इसलिए जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोज्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है। वही देश सौभाग्यवान होता है।

स्वामी दयानन्द ने अपनी शिक्षा योजना पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि शिक्षा माँ के गर्भ के बाद शिशु को शुद्ध बोलना सिखलाना चाहिए। उनका विचार था कि जब बालक कुछ ज्ञान प्राप्त कर ले तो माँ का यह कर्तव्य हो जाता है कि बालक को अपनों से बड़ों अपनों से श्रेष्ठ तथा छोटा के प्रति व्यवहार करना सिखलाये और बालक के मस्तिष्क में ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेम और उत्सुकता का भाव उत्पन्न करे तथा उसके अन्दर धार्मिक भावनाएं जागृत करें। स्वामी जी के अनुसार माता बालक की प्रथम शिक्षिका होती है, इसलिए बालक को माँ द्वारा प्रदत्त ज्ञान, धार्मिक पुस्तकों एवं ग्रन्थों पर आधारित होना चाहिए। बालक को माता—पिता उत्तम शिक्षा प्रदान करे, जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावे। माँ बालक को बोलना व व्यवहार करने के उचित शिक्षा प्रदान करें।

बालक को पाँच वर्ष की अवस्था के बाद शिक्षा का कार्यक्रम निरूपित करते हुए लिखा है कि जब पाँच वर्ष का लड़का व लड़की हो जाये तब देवनागरी तथा अन्य देशी भाषा के अक्षरों का अभ्यास कराना चाहिए इसके पश्चात जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, व, धर्म, परमेश्वर के प्रति प्रेम तथा माता—पिता, आचार्य, विद्वान, अतिथि, राजा प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी के साथ व्यवहार तमा इसके मंत्र, श्लोक सूत्र भी अर्थ सहित कष्टस्त कराना चाहिए। विद्यालयी शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा—आठ वर्ष की अवस्था होने पर सभी लड़के—लड़कियों को पाठशाला में भेजना चाहिए। विद्यालयी शिक्षा के लिए स्वामी दयानन्द जी ने संस्कृत भाषा के ज्ञानार्थ पाणिनीकृत अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य को डेढ़—डेढ़ वर्ष के अन्तर से अध्ययन करने के लिये सहमति प्रदान की। उनका विचार था कि तीन वर्ष में व्याकरण का समुचित ज्ञान प्राप्त कर शास्त्रों का शीघ्र अध्ययन कर सकते हैं। उन्होंने सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी व मनोरमा को व्याकरण के ज्ञान के लिए कोई महत्व प्रदान नहीं किया है। उनका विचार था कि व्याकरण के बाद यास्कमुनी कृत निघण्टु व निरुक्त का 6 या 8 माह तक अध्ययन कराया जाय। इसके पश्चात पिण्डगलाचार्य कृत छन्दों, ग्रन्थों का चार माह में अध्ययन कर छन्दों के ज्ञान से परिपूर्ण महाभारत की विदुर नीति एक वर्ष में अध्ययन करें।

तत्पश्चात् षट्दर्शनों (पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त) को तथा दस उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, रेतरेय, तेतिरीय, छान्दोग्य, वृद्धारण्यक) को दो वर्ष में पढ़ ले। इसके बाद अथर्ववेद (शिल्प विद्या) आदि का अध्ययन रे। तत्पश्चात् ज्योतिष शास्त्र जिसमें अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, भूगोल, जन्तु विज्ञान और भूगर्भशास्त्र का अध्ययन सम्मिलित है दो वर्ष में पूर्ण कर लेना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने ग्रह, मुहूर्त जन्म, राशि आदि ग्रंथों के अध्ययन को उचित स्थान प्रदान नहीं किया। उनका विश्वास था कि इस शिक्षा योजना से 20 या 21 वर्ष में जो ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है वह अन्य शिक्षा पद्धति से 100 वर्ष में भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। स्वामी दयानन्द भारतीय दर्शन के ज्ञान की अभिवृद्धि तथा देशवासियों में राष्ट्रीय भावना के संचार हेतु संस्कृति तथा हिन्दी भाषा के पठन पाठन को पर्याप्त महत्व दिया।

उपरोक्त पाठ्यक्रम के अलावा विद्यार्थियों को धार्मिक, व्यवहारिक, प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये स्वामी दयानन्द जी ने मन्त्रोच्चारण, दैनिक प्रार्थना, प्रातः स्नान, प्राणायाम, व्यायाम, सान्ध्योपासना तथा अग्नि होम, ब्रह्मचार्य का पालन आदि को शिक्षा के दैनिक कार्यों में सम्मिलित किया।

स्वामी दयानन्द की शिक्षा योजना निम्न सिद्धान्तों पर आधारित थी प्रथम— उन्होंने धर्म और नैतिकता को शिक्षा का अनिवार्य अंग स्वीकार किया। उनके विचार में धर्म एवं नैतिकता विहीन शिक्षा का कोई मूल्य नहीं था उन्होंने नैतिकता का मूलधार न्यायोचित कार्य को स्वीकार किया तथा इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा— कहने, सुनने, धर्मोपदेश करने, पढ़ने या पढ़ाने का केवल यह उद्देश्य है कि व्याक्ति न्यायोचित कार्य करें। इस न्यायोचित कार्य की शिक्षा तथा संस्कृत के ज्ञानके लिये उन्होंने वेदाध्ययन को अनिवार्य स्वीकार करते हुए लिखा जो वेद पढ़ते हैं वे न्यायोचित कार्य करते हैं योग का पालन करते हैं तथा मोक्ष द्वारा परमानन्द की प्राप्ति करते हैं।

शिक्षार्थियों को नैतिक तथा धार्मिक बनाने के लिए ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचार्य को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया। ब्रह्मचर्य के पालनार्थ स्वामी दयानन्द जी सहशिक्षा के पक्षधर नहीं थे। इसलिए स्वामी जी लड़कों की पाठशाला में लड़कों को तथा लड़कियों की पाठशाला में लड़कियों को पढ़ाने के विचार रखते थे। उनका विचार था कि स्त्रियों की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों के पाठशाला में सभी शिक्षक तथा शिक्षकेत्तर कर्मचारी पुरुष ही हों। स्वामी दयानन्द जी का विचार था कि पाँच वर्ष की आयु से बालक और बालिकाओं की शिक्षा की पृथक पाठशालाओं में व्यवस्था होनी चाहिए। बालक एवं बालिकाओं के विद्यालय को कम से कम तीन मील की दूरी पर स्थापित करने का सुझाव दिया। विद्यालय को नगर से या ग्राम से चार कोस की दूरी पर स्थापित करने की सलाह दिया। बालक व बालिकाओं को सदाचारी बनाने के लिए जहाँ स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य की सलाह दी तथा सहशिक्षा का विरोध किया, वही सदाचरण युक्त शिक्षक शिक्षिकाओं के द्वारा शिक्षा प्रदान करने के पक्षपाती थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि जो शिक्षक स्त्री या पुरुष दुराचारी हो, उनसे शिक्षा नहीं दिलानी चाहिए किन्तु जो पूर्ण विद्याधारी हो या विद्यायुक्त धार्मिक हो वे ही पढ़ाने व शिक्षा देने योग्य हैं। स्वामी दयानन्द ने विषय के पारंगत विद्वान शिक्षकों द्वारा शिक्षा का समर्थन किया विद्यार्थियों को चारित्रिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाने के विचार के कारण स्वामी जी ने विद्यार्थियों को सदैव शिक्षक के साथ रहना आवश्यक बताया है।

स्वामी दयानन्द ने उपनयन संस्कार को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना तथा इस सम्बन्ध में लिखा है कि— “माता—पिता तथा आचार्य के द्वारा बालकों को गायत्री मंत्र सिखाया जाना चाहिए। उन्होंने प्राणायाम को भी शिक्षा का अनिवार्य अंग स्वीकार किया। विद्यार्थियों को सदगुण सम्पन्न बनाने के लिये शिक्षकों को कर्तव्य को निश्चित करते हुए उन्होंने लिखा—शिक्षक और छात्रों का

सम्बन्ध पिता—पुत्र के समान होना चाहिए। आचार्यों को सत्य, धर्माचरण का उपदेश देना चाहिए। पढ़ने—पढ़ाने माता—पिता की सेवा करने प्रमाद का परिहृय्याग, विद्वानों का सत्कार, माता—पिता तथा आचार्य की सेवा सत्य भाषण, सदाचरण आदि का उपदेश देना चाहिए।

विद्यार्थियों को दुराचरण से दूर रखने के लिये स्वामी दयानन्द कठोर दण्ड देने के पक्षधर थे। इस बारे में उन्होंने लिखा है कि जो माता—पिता और आचार्य संतानों और शिष्यों को दुराचरण करने पर दण्ड देते हैं प्रमाणित करते हैं, वे अपने संतानों और शिष्यों को अमृत पिला रहे हैं। जो अपने सन्तानों व शिष्यों को त्रुटि करने पर दण्ड नहीं देते वे अपने शिष्यों और सन्तानों को विष पिलाकर नष्ट—भ्रष्ट करते हैं।

स्वामी दयानन्द ने देशवासियों को सदगुण सम्पन्न बनाने के लिये शिक्षा को अनिवार्य बताया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि ऐसा राजनियम होना चाहिए कि आठ वर्ष से अधिक आयु के बालकों को घर में न रखा जाय। स्वामी दयानन्द शिक्षा के लोकतान्त्रिक रूप के समर्थक थे। उन्होंने समस्त वर्गों को बिना भेदभाव के शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर बला दिया। स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षकों को ब्रह्मणों के अलावा अन्यवर्ग के लोगों को भी शिक्षा प्रदान करनी चाहिए, क्योंकि जब तक सभी वर्ग के लोगों को शिक्षा प्राप्त नहीं होगी तब तक न तो ज्ञान का प्रसार होगा और न ही राष्ट्र का विकास होगा। जब सभी वर्ग के लोग सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत हो जायेंगे तो को भी वर्ग धार्मिक भावनाओं, दृष्टिकोणों एवं कारयपूर्ण व्यवहार का आचरण नहीं करेंगे। विद्यालय के आवास व्यवस्था में भी जनतान्त्रिक तथा वर्ग विभेद की भावना निहीत होनी चाहिए। सभी को एक ही प्रकार की वस्तु एवं भोजन वस्त्र और बिछौना मिलना चाहिए। सभी को आत्मसंयम का जीवन व्यतीत करना चाहिए।

स्त्री शिक्षा—सौ वर्ष पहले आर्यसमाज ने स्त्रीशिक्षा का कार्य प्रारंभ किया था तो स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। उन दिनों सामान्य जनता में यह विश्वास बुद्धमूल था कि स्त्रियों को शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। इससे उनका चरित्र भ्रष्ट हो जाता है वे विधवा हो जाती हैं। इस अन्धविश्वास और गूढ़ग्राह के कारण उस समय कोई भी माता—पिता अपनी कन्याओं को शिक्षा देने के लिए तैयार नहीं होता था। यदि कोई ऐसी शिक्षा देने का प्रयास करता था तो उनका न केवल अतिउग्र विरोध किया जाता था, बल्कि उस गालियाँ दी जाती थी, उस पर व्यंग्य कसे जाते थे उसे जाति से भी बहिष्कृत करने की धमकी दी जाती थी।

दूसरा सर्वोत्तम उदाहरण आर्यसमाज की पहली शिक्षण—संस्था कन्या महाविशालय, जालन्धर को स्थापित करने वाले लाल देवराज और लाल मुंशीराम थे।

ईसाई मिशनरिया ने अपने धर्म के प्रचार की दृष्टि से लड़कियों के स्कूल खोले थे। महाराष्ट्र में समाज सुधारक ज्योतिराव फुले तथा बंगाल में ईश्वर चन्द्र, विद्यासागर ने कन्याओं के विद्यालय स्थापित किये थे। किन्तु इनमें किसी का दृष्टिकोण महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण जितना व्यापक नहीं था।

सबने केवल कन्याओं को साक्षर बनाने पर दिया। महर्षि कन्याओं को साक्षर बनाने के साथ—साथ उन्हें वेद वेदांग पढ़ाने और गृहोपयोगी कलाओं के सिखाने पर बल देते थे।

आर्य समाज ने पिछली शताब्दी के अन्त में आरंभ किया। और शीघ्र ही विभिन्न आर्य समाजों द्वारा कन्याओं की शिक्षा के लिए सैकड़ों की संख्या में पाठशालाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय और कन्या गुरुकुल स्थापित किये गये। इनमें लाखों कन्याओं ने शिक्षा ग्रहण की। स्त्रीशिक्षा के प्रसार के क्षेत्र में पिछले सौ वर्षों में आर्य समाज द्वारा किया गया कार्य अतीव महत्वपूर्ण और अद्वितीय है। प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा बालाकें का गुरुकुल खोलने से एक दशक पहले वैदिक आदर्शों के अनुसार, कन्याओं को आर्य संस्कृति की शिक्षा देने के लिए कन्या महाविद्यालय जालन्धर की

स्थापना की गयी थी। यह स्त्रीशिक्षा का बड़ा क्रांतिकारी और साहसिक पग था। सौभाग्यवश बालक बालिकाओं के लिए गुरुकुल पद्धति की शिक्षा संस्थाओं के जन्मदाता जालन्धर आर्यसमाज के दो प्रमुख आर्य समाज नेता, ला देव राज और महात्मा मुंशीराम थे।

स्त्रीशिक्षण-संस्थाओं का वर्गीकरण—आर्यसमाज ने संस्थाओं का विकास किया। इन्हे प्रधान रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। कन्या गुरुकुल तथा पुत्री पाठशालाएँ। कन्या गुरुकुलों की यह विशेषता थी कि वे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के शिक्षा विभागों द्वारा बनाये गये पाठ्यक्रम तथा नियमों को स्वीकार नहीं करते थे। दूसरे प्रकार की संस्थाएँ पुत्री पाठशालाएँ और कन्या विद्यालय थे। ये राज्य सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत पाठ-विधि के अनुसार कन्याओं की शिक्षा की व्यवस्था करते थे। सरकार द्वारा बनाये गये सभी विधि-विधानों का पालन करते थे और सरकार से अपनी संस्थाओं के लिए यथासम्भव अधिक से अधिक अनुदान प्राप्त करने का प्रयास करते थे।

स्त्रीशिक्षण-संस्थाओं का विकास—आर्य समाज के विकास तीन बड़े युगों में बाँटा जा सकता है

- कन्या महाविद्यालय युग(1590 से 1922) कन्या महाविद्यालय अपने ढंग की एक अनूठी और अनोखी संस्था थी। इसने आर्य समाज में स्त्रीशिक्षा के कार्य का श्री गणेश किया और प्रबल विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी इसने इतनी सफलता से सम्पन्न किया कि यह अपने समय की आदर्श अनुकरणीय संस्था बन गयी और इसके नमूने पर अनेक आर्य समाजियों ने अपने यहाँ कन्या महाविद्यालय शुरू किये।
- दूसरा युग कन्या गुरुकुलों का है।

आर्य समाज ने बालकों के गुरुकुल के बाद कन्याओं के लिए भी गुरुकुल खोला। 1921 ई० में गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर स्वामी श्रदानन्द सरस्वती ने कन्या गुरुकुल खोलने की घोषणा की। 1923 ई० में यह दिल्ली के दरियागंज में एक भवन में खोला गया। 1927 ई० में यह गुरुकुल दरियागंज से देहरादून स्थानांतरित हो गया। इस गुरुकुल की उपाधि "विद्यालूता" है। इसके बाद उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि विभिन्न प्रान्तों में कन्या गुरुकुलों की स्थापना हुई

- तीसरा युग 1959 से दिल्ली में नरेला कन्या गुरुकुल की स्थापना के साथ शुरू हुआ। यह कन्या गुरुकुल की आर्य-पद्धति के विकास का युग है। इस आर्य-पद्धति के जन्मदाता स्वामी दयानन्द और आचार्य भगवान देव थे। इनका यह विश्वास था कि देहरादून आदि के कन्या गुरुकुलों में महर्षि की सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित पाठविधि का पूरा अनुसरण नहीं होता है। कन्याओं को महर्षि द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार वेद-वेदांग का सम्पूर्ण ज्ञान कराया जाना चाहिये।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने शैक्षणिक विचारधारा में अंग्रेजी ज्ञान को भी स्थान प्रदान किया। इस सम्बंध में उनका विचार था कि हमारा अंग्रेजी में अपूर्ण रहना महत्वहीन है लेकिन संस्कृत में अपूर्ण रहना हमें विनाश के कगार पर माध्यम स्वीकार किया। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने पाश्चात्य के शिक्षा के दुष्प्रभाव से देशवासियों की रक्षा के लिए भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा प्रणाली को अपनाने पर बल दिया। उनकी यह विचारधारा देशवासियों को धर्म एवं नैतिकता प्रदान करने वाली तथा राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण बनाने वाली थी।

कार्यक्षेत्र

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वदेश को वैदिक शिक्षा सम्पन्न बनाने के लिए वैदिक पाठशालाओं की स्थापना का प्रयास किया। उनके द्वारा स्थापित पाठशालाओं को दो उद्देश्य थे—

- देश की जनता में व्याप्त अन्धकार को दूर करने के लिए ज्ञान का प्रसार करना।
- वैदिक ज्ञान का प्रसार करना।

आर्य समाज के सक्रिय कार्यकर्ता चौधरी गुरुचरण ने स्वामी दयानन्द की सलाह पर मिर्जापुर (उ०प०) के प्रथम पाठशाला स्थापित करने का वचन दिया। उन्होंने विद्यालय स्थापित करने का बचन दिया। उन्होंने विद्यालय का वित्तिय भार जिनमें छात्रों के ऊपर लिया। इसके आचार्य पण्डित जुगल किशोर तथा। पण्डित बलदेव प्रसार नियुक्त हुए। इस विद्यालय के लिए आवश्यक ग्रन्थ बनारस से लाये गये थे।

इनमें विद्यार्थियों की संख्या 30-50 के बीच थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सन् 1870 ई० में दूसरी पाठशाला काशगंज, जिला-एटा, उ०प० में प्रारम्भ की। इसी वर्ष एक अन्य पाठशाला छलेश्वर में स्थापित की गई। स्वामी जी द्वारा फरुखाबाद तथा काशी में भी पाठशाला स्थापित की गयी। स्वामी जी ने राष्ट्रनिर्माण के उद्देश्य से इन पाठशालाओं में कड़ा अनुशासन स्थापित किया। उन्होंने यह नियम निर्धारित किया कि वही छात्र इन पाठशालाओं में भर्ती किये जायेंगे जो निरन्तर 6 वर्ष तक पढ़ने के लिये बचनबद्ध हो। प्रत्येक छात्र के लिए सन्ध्या गायत्री, जाप सूर्योदय से पूर्ण शैय्यात्याग तथा नियम त्याग करने पर उस दिन भोजन न करने की प्रतिज्ञा आदि का आवश्यक बनाया गया। यह नियम छात्रों व शिक्षकों दोनों पर लागू होता था। मूर्ति पूजा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने पर स्वामी जी ने एक छात्र पर 25 रुपया दण्ड लगाया, जो क्षमा याचना करने पर 15 रुपया कर दिया जाता था। उन्होंने जैन धर्म का प्रचार करने तथा कई बार मना करने पर बन्धन करने के कारण शिक्षक को विद्यालय से निष्कासित कर दिया। इस प्रकार के कठोर अनुशासन व विद्यालय के कुप्रबंध के कारण स्वामी जी को अपने जीवन काल में ही कुछ विद्यालयों को बन्द कर देना पड़ा। सन् 1883 से स्वामी दयानन्द सरस्वती के निधन के पश्चात आर्य समाज ने डी० ए० वी० (दयानन्द ऐंग्लोवैदिक) विद्यालयों व कॉलेजों तथा गुरुकुलों की स्थापना करके देश में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार में अभिवृद्धि की आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्व पूर्ण योगदान दिया।

गुरुकुल का शुभारम्भ

गुरुकुल की स्थापना संस्कृति भाषा व वेदाध्ययन को अत्यधिक महत्व प्रदान करने के लिये हुई। स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य आर्य समाजियों ने यह महसूस किया कि डी० ए० वी० कॉलेज द्वारा जो शिक्षा प्रणाली लागू की गयी है, वह वैदिक शिक्षा पद्धति से दूर हो चुकी है। क्योंकि इन विद्यालय में संस्कृत तथा वेदाध्ययन पर बल प्रदान नहीं किया जा रहा था। लाला लापत राय का विचार था कि जिस शिक्षा पद्धति का अनुकरण डी० ए० वी० कॉलेज कर रहा है वह वैदिक आदर्शों तक पहुँचने में विफल हो रही थी। शिक्षण संस्थान के प्रबन्धक शिक्षा के राष्ट्रीय स्तर की ओर ध्यान देने लगे थे। विश्वविद्यालय के प्रबन्धकों ने इन विद्यालय के पाठ्यक्रमों में मौलिक परिवर्तन करके इनके स्वतन्त्र पठन-पाठन में अवरोध उत्पन्न कर दिया था।

स्वामी श्रद्धानन्द सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित शिक्षा प्रणाली स्थापित करना चाहते थे। स्वामी श्रद्धानन्द के वैदिक को लागू करने के तीन प्रमुख उद्देश्य थे—

प्रथम – वह छात्रों को नैतिक शिक्षा प्रदान करना चाहते थे।

द्वितीय – छात्रों को धार्मिक एवं आदर्श नागरिक बनाना चाहते थे।

तृतीय – ज्ञान के लिये शिक्षा प्रदान करना चाहते थे न कि विश्वविद्यालय की परीक्षा उत्तीर्ण करना मात्र उनका उद्देश्य था। स्वामी श्रद्धानन्द प्राचीन पद्धति पर विद्यालय स्थापित करना चाहते थे। उनका उद्देश्य था कि हमारे आदर्श भारत में तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय होने चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के समर्थन थे। इनके इन्ही विचारों के कारण इन्हें धर्मात्मा कहा गया। महात्मा मुंशीराम के शब्दों में—‘वह लोग जो अंग्रेजी तथा विज्ञान के पक्षधर थे, उन्होंने हमारे सम्बन्ध में यह घोषित किया कि हमलोग धार्मिक जड़वादी हैं। इसलिये हम सबको कॉलेजों की प्रबन्ध समिति से अलग कर दिया गया’।

स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल की स्थापना के लिये प्रथम प्रयास सन् 1897 ई० में किया तथा आर्यपात्रिका व अन्य समाचार पत्रों ने इसका समर्थन किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने सन् 1898 ई० में गुरुकुल की स्थापना के लिये एक प्रस्ताव पारित किया, परन्तु अर्थाभाव के कारण वह तुरन्त क्रियान्वित नहीं हो सका। इस अर्थाभाव को पूर्ण करने के लिये स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रतिज्ञा की कि—जब तक 30000 (तीस हजार) रुपये एकत्रित नहीं कर लेंगे, तब तक घर में पैर नहीं रखेंगे। इस प्रतिज्ञा को पूरा करने में स्वामी श्रद्धानन्द जी को आठ महीने लगे। लाला लाजपत राय तथा ठाकुर दत्त लाहौर या अमृतसर के निकट गुरुकुल की स्थापना करना चाहते थे जबकि मुंशी राम की इच्छा किसी नदी के किनारे गुरुकुल स्थापित करने की थी।

विजैनौर जिले के मुंशी अमन सिंह ने गुरुकुल के स्थापनार्थ गंगा के किनारे अवस्थित अपना कांगड़ी गाँव दान स्वरूप प्रदान कर दिया। जब यह सूचना स्वामी श्रद्धानन्द को मिली तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा सन् 1901 में भागीरथी के तट पर गुरुकुल हेतु भवन निर्माण प्रारम्भ किया तथा 4 मार्च 1902 को 20 ब्रह्मचारी को इसमें अध्ययनार्थ प्रवेश दिया गया, जिनमें महात्मा मुंशीराम के दो पुत्र भी शामिल थे। इसका नाम गुरुकुल कांगड़ी रखा गया। इसके प्रथम आचार्य पण्डित गंगादत्त थे।

गुरुकुल में प्रवेश नियमावली

स्वामी दयानन्दी सरस्वती के मतानुसार गुरुकुल में प्रवेश के लिये बालक की आयु 6–8 वर्ष के मध्य निश्चित की गयी थी। परन्तु विशिष्ट परिस्थितियों के लिये इसका समय 10 वर्ष की उम्र तक मान्य हुआ। गुरुकुल में प्रवेश लेने के इच्छुक बालक के लिए माता-पिता को एक शपथ पत्र लिखित रूप देना होता था। कि बालक 24 वर्ष की उम्र या 16 वर्ष तक गुरुकुल में अध्ययन करेगा। यह घोषणा पत्र दो नियमों पर आधारित था—

(क) यदि 24 वर्ष की उम्र से पहले किसी ब्रह्मचारी का विवाह का विवाह हो जाता है तो गुरुकुल के व्यवस्थापक उसे संस्था से निष्कासित कर सकेंगे।

(ख) यदि किसी ब्रह्मचारी की पाठ्यक्रम पूर्ण करने के बाद 24 वर्ष के पूर्ण शादी हो जाती है तो गुरुकुल द्वारा प्रदत्त सभी उपाधियाँ व प्रमाणपत्र उससे छीन लिये जायेंगे।

पाठ्यक्रम

गुरुकुल के स्वनिर्धारित पाठ्यक्रम निम्न प्रकार है—

- हिन्दी— जिससे शब्द उच्चारण, शब्द जोड़ना, कविता याद करना।
- उपदेश— सन्धा, हवन आदि।
- स्वस्तिवाचन को याद करना।
- संस्कृत व्याकरण एवं संस्कृत साहित्य के अध्ययन का प्रारम्भ।
- शान्ति प्रकरण तथा हवन मंत्रों को याद करना।

- धार्मिक उपदेशों में व्यवहार तथा चुने हुए वेद मंत्रों को याद करना।
- अंग्रेजी अध्ययन का प्रारम्भ।
- धार्मिक शिक्षाएं— जिसमें महर्षि दयानन्द व आर्य समाज के सन्दर्भ में।
- उपदेश— सन्धा व प्रार्थना के अन्य मंत्रों के भावार्थ की व्याख्या।
- उपदेश— सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे व पाँचवें समुल्लास से तथा आर्य उद्देश्य रत्नमाला के महत्वपूर्ण पाठ।
- धार्मिक उपदेश सत्यार्थ प्रकाश का छठवाँ व सातवाँ समुल्लास तथा हवन के लाभ।
- छात्राधिक उपदेश— सत्यार्थ प्रकाश, गीता, वे तर्कशास्त्र
- चित्रकला
- अनिवार्य विषय जिनमें संस्कृत साहित्य व व्याकरण, हिन्दी साहित्य, अंग्रेजी, धार्मिक शिक्षा, गणित या गृह विज्ञान (लड़कियों के लिये)
- विषयों की योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश का अधिकारी होगा।
- शिक्षा का माध्यम हिन्दी रहेगा।

दैनिक कार्यक्रम

गुरुकुल की दैनिक कार्यप्रणाली प्रातः 4:30 बजे से राति 9:30 बजे तक रखी गयी। विद्यार्थियों को सोने के लिए 7 घण्टे का समय दिया गया था। दैनिक कार्यक्रम में सन्धा, वहन, शारीरिक व्यायाम, स्वल्पाहार, नियमित विद्यालयी शैक्षणिक कार्यक्रम दोपहर का भोजन, स्वाध्याय तथा मैदान के खेल शामिल थे।

गुरुकुल का विकास

हरिद्वार के निकट कांगड़ी में स्थापित गुरुकुल का उत्तरोत्तर विकास होता गया। यह एक विद्यालय से महाविद्यालय में परिणत हुआ तथा एक कार्यालय एवं फूस की झोपड़ी के स्थान पर इसने अनेक भवनों जिनमें — विद्यालय, गौशालाएँ, औशधालय, अतिथि गृह आदि का निर्माण हुआ। यह कई मीलों के क्षेत्र में विस्तृत है। इस प्रकार गुरुकुल का नया रूप पण्डित विश्वभर नाथ (अधिवक्ता) तथा प्रो० रामदेव (आचार्य) की देखरेख में गठित हुआ।

आर्य समाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों ने वैदिक शिक्षा पद्धति का प्रसार किया। इस गुरुकुल पद्धति ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों का प्रसार किया तथा विद्यार्थियों में ब्रह्मचर्य, सादाजीवन और उच्च विचार तथा शिक्षक व विद्यार्थियों में पिता-पुत्र तुल्य सम्बन्ध आदि गुणों का विकास किया।

गुरुकुल प्रणाली ने प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आधुनिक विज्ञान का समनवय किया। गुरुकुल पद्धति ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में लागू करके स्वभाषा को उन्नति करने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, देशभक्ति की भावनाओं का विकास किया और आत्म निर्भरता, कठिन, परिश्रम, सहयोगी जीवन, आध्यात्मिक जागृति, समाजसेवा तथा नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों आदि गुणों का विकास किया। गुरुकुलों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान भेदभाव रहित शिक्षा प्रणाली है।

इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने प्राचीन भारतीय आदर्शों पर आधारित शिक्षा प्रणाली को लागू करके देशवासियों को धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षिक दृष्टि से सम्पन्न बनाया तथा उनमें चरित्रिक सुदृढ़ता, कर्मठता, सहयोग आदि गुणों का विकास किया जो भारतीय स्वाधीनता में परम सहायक सिद्ध हुए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अशोक, "आर्य समाज एक चिन्तन", प्रथम संस्करण, 1996
2. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र, "आर्य समाज" 18 जनवरी से 24 जनवरी 2004
3. चार्ल्स ग्रन्ट— ए सोर्सबुक ऑफ मार्डन इण्डिया एजुकेशन, मैकमिलन एण्ड कम्पनी बम्बई, 1938 पृ0-12।
4. सैय्यद महमूद—हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश अजुकेशन इन इण्डिया, ए0एम0ओ0 कॉलेज अलीगढ़, 1895, पृ0-10।
5. डॉ0 आर0 एस0 पारीख— कान्ट्रिब्यूशन ऑफ आर्य समाज टू इण्डियन अजुकेशन, पृ0-171-173।
6. डब्ल्यू आर्चर— इण्डियन एण्ड इट्स फ्यूचर लन्दन— 1909, पृ0-263।
7. डॉ0 भवानी लाल भारतीय—ऋषि दयानन्द तथा आर्य समाज की संस्कृति साहित्य की देन, पृ0-17।
8. सी0 डिमैट्रियस— रूलर्स ऑफ इण्डिया, लार्ड विलियम वेंटिक (1897), पृ0-154; पी0डी0 पाठक—भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्याएँ, पृ0 70; बी0एल0 ग्रोवर एवं यशपाल—आधुनिक भारत का इतिहास पृ0-255।
9. दि आनरेबिल टी0वी0 मैकालेज मिनिट, 2 फरवरी, 1825; एव0आर0 पराजये द्वारा सम्पादित ऐ सोर्स बुक ऑफ मॉर्डन इण्डियन एजुकेशन में पुर्नमुद्रित, पृ0-28 ; डॉ0 रघुवीर सिंह तोमर—भारतीय राष्ट्रीय जागरण में आर्य समाज का योगदान, पृ0-127 ; बी0एल0 ग्रोवर एवं यशपाल—आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 255 ; प्रो0 शैलेन्द्र पांथरी एवं अमरेन्द्र प्रताप सिंह—आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0-32।
10. डॉ0 रघुवीर सिंह तोमर— भारतीय राष्ट्रीय जागरण में आर्य समाज का योगदान, पृ0-127।
11. डॉ0 सरस्वती पण्डित— ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ कान्ट्रीब्यूशन ऑफ आर्य समाज टू इण्डियन एजुकेशन, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, पृ0-41।
12. अर्ल रोनाल्ड शे— दि हर्ट ऑफ आर्यावर्त, कांस्टेबिल एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, 1925,
13. सोम्येन्द्र नाथ टैगोर— आधुनिक भारत के निर्माता, पृ0-75।
14. विवके मोहन—राजाराम मोहन राय, पृ0-421
15. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद वर्मा—आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0-21-22।
16. टार0सी0 अग्रवाल—भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ0-78।
17. ए0आर0 देसाई— भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ0-114।
18. बी0एल0 ग्रोवर एवं यशपाल—आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0-326।
19. डॉ0 ललित मुखर्जी—भारत का इतिहास, पृ0-242; विपिन चन्द्र—आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0-118-119 ; आर0डा0 ललित मुखर्जी— भारत का इतिहास, पृ0-242 ; विपिन चन्द्र आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 118-119; आर0एल0 शुक्ल (सम्पा0)—आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0-347।
20. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद वर्मा—आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0-21-22।
21. स्वामी दयानन्द सरस्वती—सत्यार्थ प्रकाश, पृ0-31।
22. स्वामी दयानन्द सरस्वती— सत्यार्थ प्रकाश, पृ0-71।
23. स्वामी दयानन्द सरस्वती—सत्यार्थ प्रकाश, पृ0-31 ; डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार—आर्य समाज का इतिहास, भाग-1, पृ0-445।
24. इन्द्र विद्यावाचस्पति—आर्यसमाज का इतिहास, भाग-1, पृ0-78
25. आर्य पत्रिका, 20 जून, 1888।
26. आर्य पत्रिका, 24 अगस्त, 1886, पृ0-1
27. डॉ0 रघुवीर सिंह तोमर— भारतीय राष्ट्रीय जागरण में आर्यसमाज का योगदान, पृ0-137।
28. आर्य पत्रिका, 19 अप्रैल, 1887।
29. इन्द्र विद्यावाचस्पति— आर्य समाज का इतिहास, भाग-1, पृ0 12-13।
30. एडमिशन रूलर्स ऑफ गुरुकुल यूनिवर्सिटी, पृ0-92।
31. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार ए ब्रीफ स्केच, पृ0-11।